शोधामृत

(कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की अंतर्राष्ट्रीय सहकर्मी समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका)

ISSN : 3048-9296 (Online)
3049-2890 (Print)
IIFS Impact Factor-5.375
Vol.-3; issue-3 (July-Sept.) 2026
Page No- 153-162
©2026 Shodhaamrit
https://shodhaamrit.gyanvividha.com

Author's :
डॉ. गौतम कुमार

Corresponding Author :
डॉ. गौतम कुमार

कांग्रेस प्रणाली का पतन (1967 ई. – 2014 ई.)

सारांश : स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय राजनीति में कांग्रेस का लंबे समय तक प्रमुख स्थान रहा। जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में कांग्रेस केवल एक राजनीतिक दल नहीं रही, बल्कि देश की राजनीति का मुख्य आधार बन गई। इसे राजनीतिक वैज्ञानिक रजनी कोठारी ने "कांग्रेस प्रणाली" कहा। इस व्यवस्था में कांग्रेस को केंद्र और अधिकांश राज्यों में लगातार जनसमर्थन मिलता रहा, लेकिन समय के साथ पार्टी के भीतर गुटबाजी, भ्रष्टाचार, सत्ता का केंद्रीकरण और जनता में बढ़ता असंतोष दिखाई देने लगा। 1967 के आम चुनाव इस बदलाव का महत्वपूर्ण संकेत बने, जब कांग्रेस को कई राज्यों में सत्ता से बाहर होना पड़ा। इसके बाद 1969 में कांग्रेस का विभाजन हुआ और इंदिरा गांधी के नेतृत्व में पार्टी की राजनीति अधिक केंद्रीकृत होती चली गई।

1975 का आपातकाल कांग्रेस प्रणाली के संकट का सबसे गंभीर दौर था। आपातकाल के दौरान राजनीतिक विरोध पर नियंत्रण, नेताओं की गिरफ्तारी और प्रेस की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध ने लोकतांत्रिक व्यवस्था के सामने गंभीर सवाल खड़े किए। 1977 के चुनाव में जनता पार्टी की जीत और पहली गैर–कांग्रेसी केंद्र सरकार का गठन भारतीय राजनीति में एक महत्वपूर्ण मोड़ था। हालांकि जनता सरकार अधिक समय तक नहीं चल सकी और कांग्रेस 1980 में फिर सत्ता में लौट आई, लेकिन कांग्रेस का पहले जैसा प्रभुत्व वापस नहीं आ सका। इसी दौर में क्षेत्रीय दलों का प्रभाव बढ़ने लगा। पंजाब, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, असम और अन्य राज्यों में क्षेत्रीय राजनीति मजबूत हुई। इससे भारतीय राजनीति पहले की तुलना में अधिक प्रतिस्पर्धी और बहुदलीय होती गई।

1989 के चुनावों के बाद गठबंधन राजनीति का दौर शुरू हुआ और कांग्रेस का एकदलीय प्रभुत्व लगभग समाप्त हो गया। 1990 के दशक में भाजपा, समाजवादी दलों, बहुजन समाज पार्टी तथा अनेक क्षेत्रीय दलों के उभार ने भारतीय राजनीति को नया स्वरूप दिया। मंडल राजनीति, सामाजिक न्याय, क्षेत्रीय पहचान और आर्थिक उदारीकरण ने भी राजनीतिक बदलाव को प्रभावित किया। 2014 के चुनाव में भाजपा को स्पष्ट बहुमत मिलने से एक नए राजनीतिक चरण की शुरुआत हुई। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य कांग्रेस प्रणाली के पतन के कारणों और उसके भारतीय लोकतंत्र पर पड़े प्रभावों को समझना है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि कांग्रेस के पतन के साथ भारतीय राजनीति में केवल सत्ता का परिवर्तन नहीं हुआ, बल्कि राजनीतिक प्रतिस्पर्धा, सामाजिक भागीदारी, क्षेत्रीय दलों और गठबंधन राजनीति का भी व्यापक विस्तार हुआ।

मुख्य शब्द : कांग्रेस प्रणाली, कांग्रेस का पतन, भारतीय राजनीति, राजनीतिक परिवर्तन, गठबंधन राजनीति, क्षेत्रीय दल, भारतीय लोकतंत्र, राजनीतिक प्रतिस्पर्धा।

प्रस्तावना : स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत के सामने सबसे बड़ी चुनौती एक ऐसे लोकतांत्रिक राजनीतिक तंत्र को स्थापित करना था, जो देश की विविध परिस्थितियों को साथ लेकर आगे बढ़ सके। वर्ष 1952 में हुए पहले आम चुनाव से लेकर लगभग डेढ़ दशक तक भारतीय राजनीति में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रभाव बहुत मजबूत रहा। कांग्रेस केवल एक राजनीतिक दल नहीं थी, बल्कि स्वतंत्रता आंदोलन से निकली एक ऐसी व्यापक राजनीतिक शक्ति थी, जिसमें अलग–अलग विचारों, वर्गों, जातियों और क्षेत्रों

के लोग शामिल थे। इसी कारण कांग्रेस को लंबे समय तक भारतीय राजनीति की प्रमुख शक्ति माना गया। राजनीतिक वैज्ञानिक रजनी कोठारी ने इस स्थिति को "कांग्रेस प्रणाली" की संज्ञा दी। इस व्यवस्था में कांग्रेस का प्रभुत्व तो था, लेकिन उसके भीतर ही विभिन्न विचारों और समूहों के बीच प्रतिस्पर्धा भी दिखाई देती थी।

समय के साथ इस राजनीतिक व्यवस्था में बदलाव के संकेत दिखाई देने लगे। विशेष रूप से 1967 के आम चुनाव भारतीय राजनीति के लिए एक महत्वपूर्ण मोड़ साबित हुए। कांग्रेस केंद्र में बहुमत बनाए रखने में सफल रही, लेकिन कई राज्यों में उसे सत्ता से बाहर होना पड़ा। उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु, पंजाब, हरियाणा और अन्य राज्यों में गैर–कांग्रेसी दलों तथा गठबंधनों की सरकारें बनीं। इससे यह स्पष्ट हुआ कि कांग्रेस का राजनीतिक प्रभाव पहले जैसा मजबूत नहीं रह गया था। क्षेत्रीय दलों और विपक्षी शक्तियों के बढ़ते प्रभाव ने भारतीय राजनीति में नई प्रतिस्पर्धा को जन्म दिया। इसी दौर से एक–दलीय प्रभुत्व के स्थान पर बहुदलीय राजनीति की प्रक्रिया धीरे–धीरे मजबूत होने लगी।

1969 में कांग्रेस के विभाजन ने इस संकट को और गहरा कर दिया। इंदिरा गांधी और कांग्रेस के पुराने नेताओं के बीच संघर्ष के कारण कांग्रेस दो भागों में बंट गई। इंदिरा गांधी ने बैंक राष्ट्रीयकरण और प्रिवी पर्स की समाप्ति जैसे निर्णयों के माध्यम से अपनी अलग राजनीतिक पहचान बनाई और 1971 के चुनाव में बड़ी सफलता प्राप्त की। इससे कुछ समय के लिए कांग्रेस का प्रभाव फिर मजबूत हुआ, लेकिन पार्टी के भीतर सत्ता का अत्यधिक केंद्रीकरण भी बढ़ता गया। 1975 में आपातकाल की घोषणा ने भारतीय लोकतंत्र के सामने गंभीर प्रश्न खड़े किए। 1977 के चुनाव में जनता पार्टी की जीत और पहली गैर–कांग्रेसी केंद्र सरकार का गठन इस बात का प्रमाण था कि भारतीय मतदाता सत्ता परिवर्तन करने की क्षमता रखता है।

1980 के बाद कांग्रेस फिर सत्ता में लौटी, लेकिन इसी समय क्षेत्रीय राजनीति का विस्तार तेजी से हुआ। पंजाब में अकाली दल, आंध्र प्रदेश में तेलुगू देशम पार्टी, तमिलनाडु में द्रविड़ दल और असम में असम गण परिषद जैसे दलों ने अपने–अपने क्षेत्रों में मजबूत आधार बनाया। इससे राष्ट्रीय राजनीति में राज्यों की भूमिका बढ़ी। कांग्रेस की केंद्रीकरण की नीति, क्षेत्रीय असंतोष, सामाजिक और आर्थिक समस्याओं तथा स्थानीय पहचान के मुद्दों ने क्षेत्रीय दलों के विकास को बढ़ावा दिया। दूसरी ओर, 1980 और 1990 के दशक में भारतीय जनता पार्टी का प्रभाव भी तेजी से बढ़ा। राम जन्मभूमि आंदोलन, हिंदुत्व की राजनीति और कांग्रेस के प्रति बढ़ते असंतोष ने भाजपा को राष्ट्रीय स्तर पर एक महत्वपूर्ण विकल्प के रूप में स्थापित करने में सहायता की।

1989 के चुनाव भारतीय राजनीति में एक नए दौर की शुरुआत के रूप में देखे जा सकते हैं। इस चुनाव के बाद केंद्र में गठबंधन और अल्पमत सरकारों का दौर शुरू हुआ। 1990 के दशक में जनता दल, समाजवादी पार्टी और बहुजन समाज पार्टी जैसे दलों के माध्यम से पिछड़े वर्गों और दलितों की राजनीतिक भागीदारी बढ़ी। मंडल राजनीति ने सामाजिक न्याय और प्रतिनिधित्व के प्रश्न को राष्ट्रीय राजनीति के केंद्र में ला दिया। इस दौर में मतदाताओं की सामाजिक संरचना और राजनीतिक प्राथमिकताओं में भी महत्वपूर्ण बदलाव आया। अब केवल राष्ट्रीय मुद्दे ही चुनावों को प्रभावित नहीं करते थे, बल्कि जाति, क्षेत्र, भाषा, सामाजिक न्याय और स्थानीय विकास जैसे मुद्दे भी राजनीतिक परिणामों को प्रभावित करने लगे।

1991 के बाद आर्थिक उदारीकरण ने भारतीय राजनीति और समाज को एक नया आर्थिक संदर्भ दिया। निजी क्षेत्र को बढ़ावा, विदेशी निवेश, बाजार व्यवस्था और आर्थिक सुधारों ने देश की अर्थव्यवस्था को नई दिशा दी। इसके साथ ही विकास, रोजगार, गरीबी और आर्थिक असमानता से जुड़े प्रश्न भी अधिक महत्वपूर्ण बने। 1998 और 1999 के चुनावों के बाद भाजपा के नेतृत्व में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन की सरकार बनी। वर्ष 2004 में कांग्रेस के नेतृत्व में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन सत्ता में आया। इस प्रकार 1990 से 2014 तक भारतीय राजनीति में गठबंधन सरकारों का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई दिया। यह दौर कांग्रेस के पारंपरिक प्रभुत्व से अलग एक अधिक प्रतिस्पर्धी और बहुदलीय राजनीतिक व्यवस्था के विकास का समय था।

2014 का लोकसभा चुनाव इस पूरी राजनीतिक यात्रा में एक महत्वपूर्ण पड़ाव था। नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में भाजपा ने लोकसभा में पूर्ण बहुमत प्राप्त किया और कांग्रेस को अब तक की सबसे कमजोर स्थिति का सामना करना पड़ा। हालांकि इस परिणाम को सीधे कांग्रेस प्रणाली की वापसी के रूप में देखना उचित नहीं होगा, क्योंकि भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों का प्रभाव पहले की तुलना में काफी बढ़ चुका था। 1967 से 2014 तक की अवधि में भारतीय राजनीति ने एक–दलीय प्रभुत्व से बहुदलीय प्रतिस्पर्धा, गठबंधन राजनीति, क्षेत्रीय दलों के विस्तार और सामाजिक रूप से नए राजनीतिक समूहों के उभार तक लंबी यात्रा की। इसलिए "कांग्रेस प्रणाली" का पतन केवल एक राजनीतिक दल की कमजोरी की कहानी नहीं है, बल्कि यह भारतीय लोकतंत्र में सत्ता, समाज, क्षेत्र और राजनीतिक भागीदारी के बदलते स्वरूप की कहानी भी है। प्रस्तुत अध्ययन इसी परिवर्तन को ऐतिहासिक घटनाओं और राजनीतिक परिस्थितियों के आधार पर समझने का प्रयास करता है।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्त्व : स्वतंत्रता के बाद भारतीय राजनीति में लंबे समय तक कांग्रेस का प्रभाव रहा। केंद्र के साथ–साथ अधिकांश राज्यों में भी कांग्रेस की सरकारें बनती रहीं। इसी स्थिति को रजनी कोठारी ने "कांग्रेस प्रणाली" के रूप में समझाया था। लेकिन 1967 के चुनाव के बाद यह स्थिति बदलने लगी। कई राज्यों में गैर–कांग्रेसी दल सत्ता में आए और कांग्रेस के सामने मजबूत राजनीतिक चुनौती खड़ी हुई। इसके बाद 1969 में कांग्रेस का विभाजन, 1975 का आपातकाल और 1977 में जनता पार्टी की सरकार जैसे घटनाक्रम सामने आए। इन घटनाओं से पता चलता है कि भारतीय राजनीति लगातार बदल रही थी और मतदाता भी अपनी राजनीतिक पसंद बदल रहे थे। इसलिए कांग्रेस के प्रभुत्व में आई कमी और उसके पीछे काम करने वाले कारणों का अध्ययन करना जरूरी है।

1989 के बाद गठबंधन राजनीति, क्षेत्रीय दलों का बढ़ता प्रभाव, मंडल राजनीति और भारतीय जनता पार्टी के उभार ने भारतीय राजनीति को एक नया रूप दिया। 1991 के आर्थिक सुधारों ने भी राजनीति और समाज पर अपना

प्रभाव डाला। 1998द्99 में छक। और 2004 में न्च। की सरकारों ने गठबंधन राजनीति को मजबूत किया। अंततः 2014 के चुनाव में भाजपा को स्पष्ट बहुमत मिला। इस पूरे दौर का अध्ययन इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इससे समझने में मदद मिलती है कि भारतीय राजनीति में सत्ता का स्वरूप कैसे बदला, क्षेत्रीय और सामाजिक समूहों की भूमिका कैसे बढ़ी तथा मतदाताओं की पसंद ने राजनीतिक दलों को किस तरह प्रभावित किया। 1967 से 2014 तक का अध्ययन भारतीय लोकतंत्र में आए इन बड़े बदलावों को समझने का एक उपयोगी आधार प्रदान करता है।

अध्ययन के उद्देश्य :

1. 1967 से 2014 के बीच भारतीय राजनीति में हुए प्रमुख परिवर्तनों तथा कांग्रेस प्रणाली के उदय, प्रभुत्व और पतन के कारणों का अध्ययन करना।
2. 1967 के बाद गैर–कांग्रेसी दलों के उभार, 1969 के कांग्रेस विभाजन, 1975 के आपातकाल और 1977 के सत्ता परिवर्तन के राजनीतिक प्रभावों का विश्लेषण करना।
3. क्षेत्रीय दलों, भारतीय जनता पार्टी, मंडल राजनीति, सामाजिक न्याय, आर्थिक सुधारों तथा 1989 के बाद विकसित गठबंधन राजनीति की भूमिका और प्रभाव को समझना।
4. यह विश्लेषण करना कि 1967 से 2014 तक भारतीय राजनीति किस प्रकार कांग्रेस के प्रभुत्व से बहुदलीय प्रतिस्पर्धा और नए राजनीतिक प्रभुत्व की ओर बढ़ी तथा इस परिवर्तन का भारतीय लोकतंत्र, मतदाताओं और सत्ता के स्वरूप पर क्या प्रभाव पड़ा।

शोध प्रश्न :

1. 1967 से 2014 के बीच कांग्रेस प्रणाली के पतन के प्रमुख राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक कारण क्या थे?
2. 1967 के बाद गैर–कांग्रेसी दलों, क्षेत्रीय दलों और भारतीय जनता पार्टी के उभार ने भारतीय राजनीति के स्वरूप को किस प्रकार बदला?
3. गठबंधन राजनीति, मंडल राजनीति और 1991 के आर्थिक सुधारों ने भारतीय लोकतंत्र तथा राजनीतिक दलों की भूमिका को किस प्रकार प्रभावित किया?
4. 2014 तक भारतीय राजनीति कांग्रेस के प्रभुत्व से बहुदलीय प्रतिस्पर्धा और नए राजनीतिक प्रभुत्व की ओर किस प्रकार परिवर्तित हुई?

शोध परिकल्पना :

शून्य परिकल्पना : — 1967 से 2014 के बीच कांग्रेस प्रणाली के पतन और भारतीय राजनीति में हुए परिवर्तन के बीच कोई महत्त्वपूर्ण संबंध नहीं था। कांग्रेस के कमजोर होने का भारतीय राजनीति में बहुदलीय प्रतिस्पर्धा, क्षेत्रीय दलों के उभार और सत्ता के बदलते स्वरूप पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा।

वैकल्पिक परिकल्पना : — 1967 से 2014 के बीच कांग्रेस प्रणाली का पतन भारतीय राजनीति के व्यापक रूपांतरण का एक प्रमुख कारण था। इसके परिणामस्वरूप गैर–कांग्रेसी एवं क्षेत्रीय दलों का प्रभाव बढ़ा, गठबंधन राजनीति मजबूत हुई और भारतीय राजनीति कांग्रेस के प्रभुत्व से बहुदलीय प्रतिस्पर्धा तथा नए राजनीतिक प्रभुत्व की ओर बढ़ी।

शोध–पद्धति एवं स्रोत : अध्ययन में ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक शोध–पद्धति का प्रयोग किया गया है। अध्ययन की समय–सीमा 1967 से 2014 तक रखी गई है, क्योंकि 1967 के चुनाव से भारतीय राजनीति में कांग्रेस के पुराने प्रभुत्व को पहली बड़ी चुनौती मिली और 2014 में भाजपा के स्पष्ट बहुमत के साथ राजनीति में एक नया दौर दिखाई दिया। अध्ययन में घटनाओं को केवल क्रम से बताने के बजाय उनके कारणों और प्रभावों को समझने का प्रयास किया गया है। इसके लिए चुनाव परिणाम, राजनीतिक दलों के उतार–चढ़ाव, सरकारों में बदलाव, गठबंधन राजनीति, क्षेत्रीय दलों के विकास, मंडल राजनीति, आर्थिक सुधार और मतदाताओं के बदलते रुझान को आधार बनाया गया है। अलग–अलग राजनीतिक घटनाओं को उनके सामाजिक और आर्थिक संदर्भ से जोड़कर देखा गया है, ताकि यह समझा जा सके कि कांग्रेस प्रणाली कमजोर क्यों हुई और भारतीय राजनीति का स्वरूप किस प्रकार बदला। अध्ययन में तुलनात्मक दृष्टिकोण का भी उपयोग किया गया है, जिसके माध्यम से अलग–अलग चुनावों और राजनीतिक चरणों के बीच समानताओं तथा अंतरों को समझने का प्रयास किया गया है।

शोध के लिए प्राथमिक और द्वितीयक दोनों प्रकार के स्रोतों का उपयोग किया गया है। प्राथमिक स्रोतों में भारत के चुनाव आयोग की चुनाव संबंधी रिपोर्टें, चुनाव परिणाम, सरकारी दस्तावेज, संसद की कार्यवाही, राजनीतिक दलों के घोषणापत्र तथा उस समय के प्रमुख भाषण और वक्तव्य शामिल हैं। द्वितीयक स्रोतों में इतिहास और राजनीति विज्ञान से संबंधित पुस्तकें, शोध–पत्र, पत्र–पत्रिकाएँ, समाचार–पत्र तथा उपलब्ध शोध–अध्ययन शामिल किए गए हैं। कांग्रेस प्रणाली को समझने के लिए रजनी कोठारी जैसे राजनीतिक चिंतकों के विचारों को भी ध्यान में रखा गया है। प्राप्त सामग्री का अध्ययन करके घटनाओं के बीच संबंध स्थापित करने और उनके राजनीतिक प्रभावों को समझने का प्रयास किया गया है। इस प्रकार यह शोध केवल राजनीतिक घटनाओं का वर्णन नहीं करता, बल्कि 1967 से 2014 के बीच भारतीय राजनीति में आए व्यापक परिवर्तन को ऐतिहासिक संदर्भ में समझने का प्रयास करता है।

साहित्य की समीक्षा : भारतीय राजनीति में कांग्रेस के प्रभुत्व और उसके बदलाव को समझने के लिए कई इतिहासकारों और राजनीतिक विचारकों ने महत्वपूर्ण अध्ययन किए हैं। रजनी कोठारी ने अपनी पुस्तक भारत में राजनीति में स्वतंत्रता के बाद की राजनीति को समझाने के लिए "कांग्रेस प्रणाली" की अवधारणा प्रस्तुत की। उनके अनुसार कांग्रेस केवल एक राजनीतिक दल नहीं थी, बल्कि उसके भीतर समाज के अलग–अलग वर्गों और विचारों को स्थान मिलता था। इसी कारण लंबे समय तक कांग्रेस का राजनीतिक प्रभाव बना रहा। रामचंद्र गुहा ने स्वतंत्र भारत के राजनीतिक इतिहास पर अपने अध्ययन में बताया है कि शुरुआती दशकों में कांग्रेस की सफलता के पीछे स्वतंत्रता आंदोलन की विरासत, लोकप्रिय नेतृत्व और व्यापक संगठन का बड़ा योगदान था। बिपिन चंद्र और उनके सहयोगियों ने भी स्वतंत्रता के बाद

भारतीय लोकतंत्र के विकास को समझाते हुए कांग्रेस के प्रभुत्व तथा उसके सामने आने वाली चुनौतियों पर चर्चा की है। इन अध्ययनों से यह समझने में मदद मिलती है कि कांग्रेस प्रणाली की मजबूत नींव किस प्रकार बनी।

1967 के बाद भारतीय राजनीति में आए बदलाव को समझने के लिए कई अध्ययनों में चुनावी राजनीति, विपक्षी दलों और क्षेत्रीय शक्तियों के बढ़ते प्रभाव पर ध्यान दिया गया है। पॉल आर. ब्रास ने भारतीय राजनीति में दलों, नेतृत्व और क्षेत्रीय राजनीति की भूमिका का विस्तार से अध्ययन किया। उन्होंने बताया कि समय के साथ कांग्रेस के भीतर गुटबाजी बढ़ी और राज्यों में स्थानीय राजनीतिक शक्तियाँ मजबूत होने लगीं। 1969 में कांग्रेस के विभाजन और 1975 – 77 के आपातकाल ने भी कांग्रेस की राजनीति और उसकी छवि को प्रभावित किया। 1977 में जनता पार्टी की सरकार बनने से यह साबित हुआ कि केंद्र में कांग्रेस का प्रभुत्व स्थायी नहीं था। इसके बाद क्षेत्रीय दलों का विकास, मंडल आयोग की राजनीति और भारतीय जनता पार्टी के बढ़ते प्रभाव ने राजनीतिक व्यवस्था को और अधिक प्रतिस्पर्धी बनाया। इस दौर से जुड़े अध्ययनों में सामाजिक न्याय, जातीय राजनीति और क्षेत्रीय पहचान को भारतीय राजनीति में बढ़ती भागीदारी के महत्वपूर्ण आधार के रूप में देखा गया है।

1989 के बाद गठबंधन राजनीति और 1991 के आर्थिक सुधारों ने भारतीय राजनीति को एक नया रूप दिया। अतुल कोहली और योगेंद्र यादव जैसे विद्वानों ने भारतीय लोकतंत्र में राजनीतिक दलों, राज्यों और सामाजिक समूहों की बदलती भूमिका पर महत्वपूर्ण अध्ययन किए हैं। इन अध्ययनों से पता चलता है कि राष्ट्रीय राजनीति में अब केवल एक दल का प्रभाव निर्णायक नहीं रहा, बल्कि क्षेत्रीय दलों और गठबंधनों की भूमिका भी बढ़ गई। 1998 – 99 की एन डी ए और 2004 की यू पी ए सरकारों ने इस प्रवृत्ति को और मजबूत किया। 2014 के आम चुनाव में भाजपा को स्पष्ट बहुमत मिलने के बाद भारतीय राजनीति में एक नया राजनीतिक चरण दिखाई दिया। उपलब्ध साहित्य कांग्रेस प्रणाली के पतन, क्षेत्रीय दलों के उभार और गठबंधन राजनीति पर पर्याप्त चर्चा करता है, लेकिन 1967 से 2014 तक इन सभी घटनाओं को एक ही क्रम में जोड़कर कांग्रेस प्रणाली के पतन से भारतीय राजनीति के व्यापक रूपांतरण को समझने वाले अध्ययन की आवश्यकता बनी रहती है। प्रस्तुत अध्ययन इसी कमी को ध्यान में रखते हुए इस पूरी अवधि का ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन करने का प्रयास करता है।

शोध–अंतर : भारतीय राजनीति में कांग्रेस के प्रभुत्व, उसके पतन, क्षेत्रीय दलों के उभार और गठबंधन राजनीति पर कई अध्ययन उपलब्ध हैं। फिर भी 1967 से 2014 तक की पूरी अवधि को एक साथ देखकर कांग्रेस प्रणाली के पतन और भारतीय राजनीति में आए व्यापक बदलाव को समझने की गुंजाइश बनी हुई है। अधिकांश अध्ययनों में किसी एक चुनाव, दल या राजनीतिक घटना पर अधिक ध्यान दिया गया है। इस अध्ययन में 1967 के चुनाव से 2014 तक के राजनीतिक बदलावों को एक क्रम में रखकर देखा जाएगा। साथ ही सामाजिक, आर्थिक, क्षेत्रीय और चुनावी कारणों को जोड़कर यह समझने का प्रयास किया जाएगा कि भारतीय राजनीति का स्वरूप किस तरह बदला।

1967 के आम चुनाव : 1967 का आम चुनाव भारतीय राजनीति के लिए एक बहुत बड़ा मोड़ माना जाता है। स्वतंत्रता के बाद से लगातार कांग्रेस का देश की राजनीति पर मजबूत प्रभाव था। केंद्र के साथ–साथ अधिकांश राज्यों में भी कांग्रेस की सरकारें बनती थीं। लेकिन 1967 के चुनाव में पहली बार कांग्रेस को कई जगहों पर गंभीर चुनौती का सामना करना पड़ा। लोकसभा में कांग्रेस को पहले की तुलना में कम सीटें मिलीं और उसके राजनीतिक प्रभाव में कमी दिखाई देने लगी। हालांकि कांग्रेस केंद्र में सरकार बनाने में सफल रही, लेकिन अब यह साफ हो गया था कि उसे पहले जैसी आसान राजनीतिक स्थिति हासिल नहीं थी। जनता के बीच महँगाई, बेरोजगारी, खाद्य संकट और सरकार की नीतियों को लेकर असंतोष बढ़ रहा था। कांग्रेस के अंदर भी गुटबाजी और नेतृत्व को लेकर मतभेद बढ़ रहे थे। इन परिस्थितियों ने विपक्षी दलों को कांग्रेस के खिलाफ एकजुट होने का अवसर दिया। इस कारण 1967 का चुनाव केवल सरकार चुनने का चुनाव नहीं रहा, बल्कि भारतीय राजनीति में बदलते राजनीतिक माहौल की शुरुआत बन गया।

इस चुनाव का सबसे बड़ा असर राज्यों की राजनीति में दिखाई दिया। कई राज्यों में कांग्रेस बहुमत हासिल नहीं कर सकी और गैर–कांग्रेसी दलों ने मिलकर सरकारें बनाईं। विभिन्न विचारधाराओं वाले दलों ने अपने मतभेदों को कुछ समय के लिए अलग रखकर कांग्रेस को सत्ता से हटाने के लिए गठबंधन किया। इससे संयुक्त विधायक दल जैसी व्यवस्थाएँ सामने आईं और गठबंधन सरकारों का दौर शुरू हुआ। समाजवादी दलों, जनसंघ, स्वतंत्र पार्टी तथा अन्य क्षेत्रीय और स्थानीय दलों को अपनी राजनीतिक ताकत दिखाने का अवसर मिला। इससे यह भी पता चला कि भारतीय मतदाता केवल एक ही दल पर निर्भर नहीं है और स्थानीय मुद्दे चुनावी परिणामों को काफी प्रभावित कर सकते हैं। राज्यों में कांग्रेस के कमजोर होने से क्षेत्रीय नेताओं और छोटे दलों का महत्व बढ़ा। आगे चलकर यही प्रवृत्ति भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों के मजबूत होने और केंद्र की राजनीति में उनके प्रभाव बढ़ने का आधार बनी।

1967 के चुनाव का महत्त्व केवल कांग्रेस की सीटें कम होने तक सीमित नहीं था। इस चुनाव ने भारतीय लोकतंत्र में राजनीतिक प्रतिस्पर्धा को बढ़ाया और सत्ता के लिए नए विकल्प सामने आए। पहली बार बड़े स्तर पर यह अनुभव हुआ कि कांग्रेस को चुनौती देकर दूसरे दल भी सरकार बना सकते हैं। हालांकि कई गैर–कांग्रेसी गठबंधन सरकारें लंबे समय तक स्थिर नहीं रह सकीं, फिर भी उन्होंने भारतीय राजनीति की दिशा बदल दी। इसी दौर से गठबंधन की राजनीति को मजबूती मिली और कांग्रेस के पुराने प्रभुत्व में धीरे–धीरे कमी आने लगी। 1967 के बाद भारतीय राजनीति अधिक प्रतिस्पर्धी और विविध होती गई। इसलिए इस चुनाव को कांग्रेस प्रणाली के पतन की शुरुआत और भारतीय राजनीति में नए राजनीतिक दौर के प्रवेश के रूप में देखा जा सकता है।

1969 में कांग्रेस का विभाजन : 1967 के चुनाव के बाद कांग्रेस के सामने जो राजनीतिक चुनौतियाँ आई थीं, उन्होंने पार्टी के अंदर के मतभेदों को भी बढ़ा दिया। कांग्रेस में एक तरफ प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी थीं, जो अपनी स्वतंत्र राजनीतिक पहचान और नीतियों के आधार पर आगे बढ़ना चाहती थीं, वहीं दूसरी तरफ पार्टी के कई वरिष्ठ नेता थे, जिन्हें आम तौर पर "सिंडिकेट" कहा जाता था। सिंडिकेट में कामराज, एस. निजलिंगप्पा, अतुल्य घोष और एस. के. पाटिल जैसे प्रभावशाली नेता शामिल थे। इन नेताओं का संगठन और पार्टी के फैसलों पर काफी प्रभाव था। इंदिरा गांधी और इन

वरिष्ठ नेताओं के बीच धीरे–धीरे मतभेद बढ़ने लगे। आर्थिक नीतियों, पार्टी संगठन और सरकार के कामकाज को लेकर दोनों पक्षों की सोच अलग होती गई। 1969 में 14 प्रमुख बैंकों के राष्ट्रीयकरण और पूर्व रियासतों के शासकों को मिलने वाली प्रिवी पर्स की व्यवस्था समाप्त करने जैसे मुद्दों ने इस संघर्ष को और तेज कर दिया। इस समय इंदिरा गांधी ने खुद को गरीब और आम लोगों के हितों से जोड़ते हुए एक अलग राजनीतिक छवि बनानी शुरू की।

कांग्रेस के अंदर बढ़ते संघर्ष का सबसे बड़ा अवसर 1969 का राष्ट्रपति चुनाव बना। उस समय कांग्रेस संगठन ने नीलम संजीव रेड्डी को राष्ट्रपति पद का उम्मीदवार बनाया था। इंदिरा गांधी ने पार्टी के आधिकारिक निर्णय का पूरी तरह समर्थन करने के बजाय उपराष्ट्रपति वी. वी. गिरि को समर्थन दिया। उन्होंने कांग्रेस सांसदों और विधायकों से अपनी अंतरात्मा की आवाज के अनुसार मतदान करने की अपील की। इस चुनाव में वी. वी. गिरि को जीत मिली और नीलम संजीव रेड्डी चुनाव हार गए। इस परिणाम ने साफ कर दिया कि इंदिरा गांधी अब पार्टी के पुराने संगठनात्मक नेतृत्व के सामने खुलकर खड़ी हो चुकी थीं। राष्ट्रपति चुनाव के बाद दोनों पक्षों के बीच समझौते की संभावना बहुत कम रह गई। आखिरकार कांग्रेस संगठन दो हिस्सों में बँट गया। इंदिरा गांधी के नेतृत्व वाला गुट कांग्रेस (आर) और संगठन के वरिष्ठ नेताओं वाला गुट कांग्रेस (ओ) कहलाया। इस विभाजन ने कांग्रेस की पुरानी संगठनात्मक व्यवस्था को गहरा झटका दिया।

1969 का विभाजन भारतीय राजनीति के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण था, क्योंकि इसके बाद कांग्रेस की राजनीति का स्वरूप तेजी से बदल गया। इंदिरा गांधी ने पार्टी संगठन के पुराने प्रभावशाली नेताओं पर निर्भर रहने के बजाय सीधे जनता के बीच अपनी लोकप्रियता और राजनीतिक मुद्दों को आधार बनाना शुरू किया। 1971 के चुनाव में "गरीबी हटाओ" जैसे नारों के माध्यम से उन्होंने गरीब और कमजोर वर्गों को अपने साथ जोड़ने की कोशिश की और कांग्रेस (आर) को बड़ी सफलता मिली। इससे प्रधानमंत्री के रूप में इंदिरा गांधी की स्थिति मजबूत हुई और कांग्रेस के भीतर सत्ता का केंद्र संगठन से हटकर नेतृत्व के आसपास अधिक केंद्रित होने लगा। दूसरी ओर कांग्रेस (ओ) धीरे–धीरे कमजोर होती गई। इस प्रकार 1969 का विभाजन केवल पार्टी का आंतरिक विवाद नहीं था, बल्कि इसने भारतीय राजनीति में कांग्रेस प्रणाली के पुराने स्वरूप को बदलने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। आगे चलकर यही बदलाव कांग्रेस के प्रभुत्व में आई गिरावट और भारतीय राजनीति में नए राजनीतिक विकल्पों के उभार की पृष्ठभूमि बना।

इंदिरा गांधी और 1971 का चुनाव : 1969 में कांग्रेस के विभाजन के बाद इंदिरा गांधी की राजनीतिक स्थिति पहले से अधिक मजबूत हो गई। उन्होंने अपनी राजनीति को आम लोगों और गरीब वर्गों से जोड़ने की कोशिश की। इसी क्रम में जुलाई 1969 में उनकी सरकार ने देश के 14 प्रमुख वाणिज्यिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया। इसका उद्देश्य बैंकिंग व्यवस्था को कुछ बड़े उद्योगपतियों तक सीमित रहने से रोकना और खेती, छोटे उद्योग तथा आम लोगों को अधिक आसानी से ऋण उपलब्ध कराना था। इसी तरह सरकार ने पूर्व रियासतों के शासकों को मिलने वाले प्रिवी पर्स को समाप्त करने की दिशा में भी कदम उठाया। इन फैसलों से इंदिरा गांधी ने अपने आपको सामाजिक और आर्थिक बदलाव की समर्थक नेता के रूप में प्रस्तुत किया। दूसरी ओर कांग्रेस (ओ) और विपक्षी दलों ने उनकी नीतियों का विरोध किया। इस समय इंदिरा गांधी ने "गरीबी हटाओ" का नारा देकर सीधे जनता से जुड़ने की कोशिश की। इससे उनकी लोकप्रियता बढ़ी और कांग्रेस (आर) को संगठन के पुराने ढाँचे से अलग एक नया जनाधार बनाने में मदद मिली।

1971 का लोकसभा चुनाव इसी राजनीतिक माहौल में हुआ। इंदिरा गांधी ने चुनाव में गरीबों, किसानों और कमजोर वर्गों के हितों को प्रमुख मुद्दा बनाया। उनके सामने कई विपक्षी दल एक साथ आए और कांग्रेस (आर) को रोकने का प्रयास किया, लेकिन जनता के बीच इंदिरा गांधी की लोकप्रियता और उनके द्वारा उठाए गए मुद्दों का प्रभाव अधिक दिखाई दिया। चुनाव में कांग्रेस (आर) को बड़ी सफलता मिली और इंदिरा गांधी का नेतृत्व और मजबूत हो गया। इस जीत ने यह स्पष्ट कर दिया कि कांग्रेस की राजनीति अब पुराने संगठनात्मक नेतृत्व के बजाय प्रधानमंत्री के व्यक्तिगत नेतृत्व और जनता से सीधे संबंध पर अधिक निर्भर हो रही थी। 1971 के चुनाव के बाद इंदिरा गांधी की सरकार को अपने कार्यक्रमों को आगे बढ़ाने का मजबूत राजनीतिक आधार मिला। इससे केंद्र की राजनीति में प्रधानमंत्री पद की शक्ति भी बढ़ी और कांग्रेस के भीतर नेतृत्व का केंद्रीकरण तेज हुआ। इस चुनाव ने कांग्रेस प्रणाली के पुराने स्वरूप को बदलने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

1971 के चुनाव के बाद भारत की राजनीति में एक और बड़ी घटना सामने आई। उसी वर्ष पूर्वी पाकिस्तान में राजनीतिक और मानवीय संकट बढ़ गया तथा बड़ी संख्या में शरणार्थी भारत आए। भारत और पाकिस्तान के बीच तनाव बढ़ते–बढ़ते दिसंबर 1971 में युद्ध में बदल गया। भारतीय सेना ने इस युद्ध में महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त की और 16 दिसंबर 1971 को पाकिस्तानी सेना ने ढाका में आत्मसमर्पण किया। इसके परिणामस्वरूप पूर्वी पाकिस्तान अलग होकर बांग्लादेश के रूप में एक स्वतंत्र देश बना। इस विजय से इंदिरा गांधी की लोकप्रियता और राजनीतिक प्रतिष्ठा काफी बढ़ी। 1971 की चुनावी सफलता और युद्ध में भारत की जीत ने उनके नेतृत्व को मजबूत किया तथा कुछ समय के लिए कांग्रेस के राजनीतिक प्रभुत्व को फिर से स्थापित किया। लेकिन इसके साथ कांग्रेस की राजनीति में नेतृत्व का केंद्रीकरण भी बढ़ता गया, जिसने आगे चलकर भारतीय राजनीति के स्वरूप को प्रभावित किया।

1975 का आपातकाल : 1975 में लगाया गया आपातकाल भारतीय लोकतंत्र के इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण और विवादास्पद घटनाओं में से एक था। इसकी पृष्ठभूमि में राजनीतिक अस्थिरता, बढ़ती महँगाई, बेरोजगारी और सरकार के खिलाफ बढ़ता जन असंतोष था। गुजरात और बिहार में छात्र आंदोलनों ने धीरे–धीरे बड़ा रूप लिया और जयप्रकाश नारायण ने इस आंदोलन को व्यापक राजनीतिक नेतृत्व दिया। इसी दौरान प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के चुनाव को लेकर इलाहाबाद उच्च न्यायालय में मामला चला। 12 जून 1975 को न्यायालय ने उनके चुनाव को अमान्य घोषित करते हुए उनके निर्वाचन में चुनावी अनियमितताओं को माना। इस फैसले के बाद इंदिरा गांधी के पद पर बने रहने को लेकर राजनीतिक संकट गहरा गया। विपक्षी दलों ने उनके इस्तीफे की मांग तेज कर दी और जयप्रकाश नारायण ने भी

सरकार के खिलाफ आंदोलन को और मजबूत किया। देश में राजनीतिक माहौल तेजी से तनावपूर्ण होता गया और सरकार पर दबाव बढ़ता गया।

25 जून 1975 की रात राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद ने प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की सलाह पर संविधान के अनुच्छेद 352 के तहत आंतरिक अशांति के आधार पर राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा की। इसके बाद सरकार ने विपक्षी नेताओं और अनेक राजनीतिक कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार किया। प्रेस पर सेंसरशिप लागू कर दी गई और समाचार प्रकाशित करने तथा सरकार की आलोचना करने पर कई तरह की पाबंदियाँ लगाई गईं। नागरिक स्वतंत्रताओं पर भी व्यापक प्रतिबंध लगाए गए। राजनीतिक विरोध को नियंत्रित करने के लिए प्रशासन और सुरक्षा व्यवस्था का बड़े स्तर पर इस्तेमाल किया गया। इस दौर में संसद की भूमिका और न्यायपालिका की स्वतंत्रता को लेकर भी गंभीर बहस हुई। आपातकाल के दौरान सरकार ने अपने विकास कार्यक्रमों को आगे बढ़ाने के लिए 20–सूत्रीय कार्यक्रम शुरू किया। इसमें गरीबी कम करने, भूमि सुधार, आवश्यक वस्तुओं की उपलब्धता, मजदूरों और कमजोर वर्गों की स्थिति सुधारने जैसे मुद्दों पर जोर दिया गया। हालांकि इन कार्यक्रमों के कुछ सकारात्मक पहलू थे, लेकिन नागरिक स्वतंत्रताओं पर लगाए गए प्रतिबंधों के कारण आपातकाल की आलोचना भी लगातार होती रही।

आपातकाल का भारतीय राजनीति पर दूरगामी प्रभाव पड़ा। इस दौरान कांग्रेस का संगठन और सरकार के बीच संबंध पहले से अधिक केंद्रीकृत दिखाई देने लगा और इंदिरा गांधी के नेतृत्व की भूमिका बहुत मजबूत हो गई। दूसरी ओर विपक्षी दलों और आम लोगों के बीच सरकार के खिलाफ असंतोष भी बढ़ता गया। जनवरी 1977 में लोकसभा चुनाव की घोषणा हुई और मार्च 1977 में चुनाव हुए। इन चुनावों में कांग्रेस को बड़ा राजनीतिक झटका लगा और जनता पार्टी के नेतृत्व में नई सरकार बनी। यह स्वतंत्र भारत में पहली बार था जब केंद्र में कांग्रेस के अलावा किसी अन्य राजनीतिक गठबंधन ने सत्ता संभाली। इस सत्ता परिवर्तन ने यह साबित किया कि भारतीय मतदाता राजनीतिक परिस्थितियों के अनुसार अपना निर्णय बदल सकते हैं। इसलिए 1975 का आपातकाल और 1977 का चुनाव कांग्रेस प्रणाली के विकास तथा उसके बाद हुए राजनीतिक परिवर्तन को समझने के लिए बेहद महत्वपूर्ण घटनाएँ हैं।

1977 का चुनाव और जनता सरकार : 1975 में लगाए गए आपातकाल के बाद देश की राजनीतिक स्थिति काफी बदल गई थी। आपातकाल के दौरान विपक्षी नेताओं की गिरफ्तारी, प्रेस पर नियंत्रण और नागरिक स्वतंत्रताओं पर लगी पाबंदियों को लेकर लोगों में असंतोष बढ़ता गया। जनवरी 1977 में इंदिरा गांधी ने लोकसभा चुनाव कराने की घोषणा की। इसी समय अलग–अलग विपक्षी दलों ने कांग्रेस के सामने एक मजबूत राजनीतिक विकल्प खड़ा करने के लिए एकजुट होने का फैसला किया। भारतीय लोकदल, भारतीय जनसंघ, कांग्रेस (ओ), समाजवादी दल आदि कई दल मिलकर जनता पार्टी के रूप में सामने आए। जयप्रकाश नारायण ने इस एकता को मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। चुनाव में जनता पार्टी ने आपातकाल, लोकतांत्रिक अधिकारों और सरकार की कार्यशैली को प्रमुख मुद्दा बनाया। दूसरी ओर कांग्रेस ने अपने काम और स्थिर सरकार के आधार पर जनता का समर्थन पाने की कोशिश की। लेकिन इस बार जनता का रुख पहले जैसा नहीं रहा। खासकर उत्तर भारत में कांग्रेस के खिलाफ काफी मजबूत जनमत दिखाई दिया।

मार्च 1977 में हुए लोकसभा चुनाव का परिणाम कांग्रेस के लिए बहुत बड़ा झटका साबित हुआ। लंबे समय तक देश की राजनीति में प्रभाव रखने वाली कांग्रेस को पहली बार केंद्र में स्पष्ट रूप से सत्ता से बाहर होना पड़ा। उत्तर भारत के कई राज्यों में कांग्रेस का प्रदर्शन बेहद कमजोर रहा। इसके विपरीत जनता पार्टी को जनता का व्यापक समर्थन मिला। चुनाव परिणाम के बाद जनता पार्टी के वरिष्ठ नेता मोरारजी देसाई को प्रधानमंत्री बनाया गया। उनके नेतृत्व में सरकार का गठन हुआ। इस सरकार में अलग–अलग राजनीतिक विचारधारा वाले नेता और दल शामिल थे, इसलिए इसे चलाना आसान नहीं था। फिर भी इसका गठन भारतीय लोकतंत्र के लिए एक ऐतिहासिक घटना थी। पहली बार केंद्र में ऐसी सरकार बनी जो कांग्रेस के नेतृत्व में नहीं थी। इससे यह संदेश गया कि देश की सत्ता केवल एक ही दल के पास रहना जरूरी नहीं है और जनता चुनाव के माध्यम से किसी भी दल या गठबंधन को सत्ता में ला सकती है। 1977 का चुनाव इसलिए केवल सरकार बदलने वाला चुनाव नहीं था, बल्कि भारतीय राजनीति में सत्ता के विकल्प की संभावना को मजबूत करने वाला चुनाव था।

जनता सरकार के सामने सबसे बड़ी चुनौती अलग–अलग विचारधाराओं और नेताओं को साथ लेकर चलने की थी। जनता पार्टी में कई दलों और नेताओं का विलय हुआ था, लेकिन उनके बीच राजनीतिक सोच और संगठनात्मक हितों में अंतर बना रहा। मोरारजी देसाई सरकार ने लोकतांत्रिक संस्थाओं को मजबूत करने और आपातकाल के दौरान हुए कई निर्णयों की समीक्षा करने की कोशिश की। हालांकि आंतरिक मतभेद, नेतृत्व को लेकर खींचतान और आपसी अविश्वास के कारण सरकार अधिक समय तक स्थिर नहीं रह सकी। 1979 में मोरारजी देसाई ने प्रधानमंत्री पद से इस्तीफा दिया और जनता पार्टी की सरकार का अंत हो गया। इसके बावजूद 1977 की घटना का भारतीय राजनीति पर गहरा प्रभाव पड़ा। इस चुनाव ने कांग्रेस के लंबे प्रभुत्व को पहली बार केंद्र में गंभीर रूप से चुनौती दी और गैर–कांग्रेसी राजनीति को नई ताकत दी। आगे चलकर क्षेत्रीय दलों, गठबंधन सरकारों और बहुदलीय राजनीति के विकास में भी 1977 की घटना को एक महत्वपूर्ण पड़ाव माना गया।

क्षेत्रीय दलों का उदय : 1970 के दशक के बाद भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों का प्रभाव तेजी से बढ़ने लगा। पहले राष्ट्रीय राजनीति में कांग्रेस का दबदबा था और अधिकांश राज्यों में भी कांग्रेस ही प्रमुख राजनीतिक शक्ति थी। लेकिन समय के साथ अलग–अलग राज्यों के लोगों ने अपनी स्थानीय समस्याओं, भाषा, संस्कृति और क्षेत्रीय हितों को लेकर अलग राजनीतिक आवाज उठानी शुरू की। तमिलनाडु में द्रविड़ आंदोलन से जुड़े दलों, विशेष रूप से द्रविड़ मुनेत्र कड़गम (डीएमके) और बाद में अखिल भारतीय अन्ना द्रविड़ मुनेत्र कड़गम (एआईएडीएमके), ने राज्य की राजनीति में मजबूत स्थान बनाया। पंजाब में अकाली दल ने सिख समुदाय और पंजाब के क्षेत्रीय हितों से जुड़े मुद्दों को राजनीतिक रूप से उठाया। इन दलों के मजबूत होने से यह स्पष्ट हुआ कि मतदाताओं की राजनीतिक पसंद केवल राष्ट्रीय मुद्दों से

तय नहीं होती, बल्कि भाषा, संस्कृति, क्षेत्रीय पहचान और स्थानीय समस्याएँ भी चुनावी राजनीति को प्रभावित करती हैं। क्षेत्रीय दलों ने अपने–अपने राज्यों में कांग्रेस के पुराने राजनीतिक आधार को चुनौती दी और स्थानीय नेतृत्व को आगे आने का अवसर दिया।

1980 के दशक में क्षेत्रीय राजनीति का विस्तार और अधिक दिखाई देने लगा। आंध्र प्रदेश में अभिनेता से राजनेता बने एन. टी. रामाराव ने 1982 में तेलुगू देशम पार्टी (टीडीपी) का गठन किया। उन्होंने तेलुगू पहचान और आंध्र प्रदेश के सम्मान को राजनीति का महत्वपूर्ण मुद्दा बनाया। तेलुगू देशम पार्टी ने बहुत कम समय में राज्य की राजनीति में मजबूत स्थिति हासिल कर ली। इसी तरह असम में असम आंदोलन के बाद 1985 में असम गण परिषद (ए जी पी) का गठन हुआ। इस दल ने असम की पहचान, स्थानीय लोगों के अधिकार और अवैध प्रवास जैसे मुद्दों को प्रमुखता दी और चुनाव में सफलता प्राप्त की। इन घटनाओं से यह समझ में आया कि क्षेत्रीय मुद्दों को आधार बनाकर भी कोई राजनीतिक दल लंबे समय तक जनता के बीच अपनी जगह बना सकता है। क्षेत्रीय दलों का विस्तार केवल कुछ राज्यों तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र, कर्नाटक और अन्य राज्यों में भी अलग–अलग रूपों में क्षेत्रीय राजनीतिक शक्तियाँ मजबूत होती गईं। इससे भारतीय राजनीति में राज्यों और स्थानीय नेतृत्व की भूमिका बढ़ी।

क्षेत्रीय दलों के बढ़ते प्रभाव का सबसे बड़ा असर राष्ट्रीय राजनीति पर पड़ा। 1989 के बाद केंद्र में ऐसी सरकारों का दौर शुरू हुआ जिन्हें चलाने के लिए अलग–अलग दलों का समर्थन लेना जरूरी हो गया। क्षेत्रीय दल राष्ट्रीय स्तर पर सरकार बनाने और बचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने लगे। 1990 के दशक में गठबंधन राजनीति मजबूत हुई और राष्ट्रीय दलों को भी क्षेत्रीय दलों के साथ समझौता करना पड़ा। आगे चलकर राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (एनडीए) और संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यू पी ए) जैसे गठबंधनों में कई क्षेत्रीय दल शामिल हुए। इस तरह क्षेत्रीय राजनीति ने भारतीय लोकतंत्र को अधिक बहुदलीय और प्रतिस्पर्धी बनाया। क्षेत्रीय दलों ने स्थानीय समस्याओं को राष्ट्रीय बहस तक पहुँचाया और राज्यों की आवाज को केंद्र की राजनीति में अधिक महत्व दिलाया। हालांकि कई बार क्षेत्रीय हितों और राष्ट्रीय हितों के बीच संतुलन बनाना चुनौतीपूर्ण रहा, फिर भी 1967 से 2014 के बीच भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों का उदय कांग्रेस प्रणाली के कमजोर होने और सत्ता के नए राजनीतिक केंद्रों के बनने की एक महत्वपूर्ण वजह रहा।

राजीव गांधी का दौर : इंदिरा गांधी की 31 अक्टूबर 1984 को हत्या के बाद उनके पुत्र राजीव गांधी प्रधानमंत्री बने। दिसंबर 1984 में हुए लोकसभा चुनाव में कांग्रेस को बहुत बड़ी सफलता मिली और राजीव गांधी के नेतृत्व में सरकार बनी। उस समय लोगों को उनसे नई सोच और आधुनिक भारत बनाने की काफी उम्मीदें थीं। राजीव गांधी ने कंप्यूटर, दूरसंचार और तकनीकी विकास को बढ़ावा देने पर जोर दिया। लेकिन उनके कार्यकाल में कई ऐसे मुद्दे सामने आए जिन्होंने कांग्रेस की लोकप्रियता को प्रभावित किया। 1985 में शाहबानो मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले ने तलाकशुदा मुस्लिम महिला के गुजारे–भत्ते का सवाल उठाया। सरकार ने बाद में मुस्लिम महिला (तलाक पर अधिकार संरक्षण) अधिनियम, 1986 बनाया, जिसे लेकर देश में राजनीतिक बहस तेज हो गई। इसी दौर में राम जन्मभूमि का मुद्दा भी धीरे–धीरे राष्ट्रीय राजनीति में महत्वपूर्ण बनने लगा। 1986 में अयोध्या में विवादित ढाँचे के ताले खोले जाने की घटना के बाद इस मुद्दे को लेकर राजनीतिक और सामाजिक तनाव बढ़ा। इन घटनाओं ने राजीव गांधी सरकार के सामने एक नई राजनीतिक चुनौती खड़ी कर दी।

राजीव गांधी के कार्यकाल को सबसे ज्यादा नुकसान बोफोर्स विवाद से हुआ। 1987 में स्वीडन की रेडियो रिपोर्ट के बाद यह आरोप सामने आया कि भारत द्वारा बोफोर्स तोपों की खरीद में दलाली और भ्रष्टाचार हुआ है। सरकार ने आरोपों से इनकार किया, लेकिन विपक्ष ने इसे लगातार बड़ा राजनीतिक मुद्दा बनाया। इससे राजीव गांधी की साफ–सुथरी छवि को काफी नुकसान पहुँचा और कांग्रेस की लोकप्रियता पर भी असर पड़ा। इसी समय श्रीलंका में भी भारत की भूमिका विवाद का विषय बनी। 1987 के भारत–श्रीलंका समझौते के बाद भारतीय शांति सेना यानी आईपीकेएफ को श्रीलंका भेजा गया। इसका उद्देश्य वहाँ शांति स्थापित करना था, लेकिन भारतीय सेना को लिट्टे (एल टी टी ई) के साथ संघर्ष करना पड़ा और इस अभियान में बड़ी संख्या में भारतीय सैनिक मारे गए। श्रीलंका में भारत की सैन्य भूमिका को लेकर देश के भीतर भी सवाल उठे। इस तरह राजीव गांधी का दौर एक तरफ तकनीकी और प्रशासनिक बदलावों के लिए जाना गया, तो दूसरी तरफ राजनीतिक विवादों और बढ़ते विरोध के कारण भी याद किया जाता है।

1989 के लोकसभा चुनाव में कांग्रेस को पहले जैसी सफलता नहीं मिली और राजीव गांधी को सत्ता से बाहर होना पड़ा। इसके बाद भारतीय राजनीति में गठबंधन और गैर–कांग्रेसी राजनीति का प्रभाव और मजबूत हुआ। राजीव गांधी विपक्ष में रहकर भी राष्ट्रीय राजनीति के एक प्रमुख नेता बने रहे। 1990 के दशक की शुरुआत में कांग्रेस के सामने नेतृत्व और राजनीतिक भविष्य से जुड़ी नई चुनौतियाँ थीं। इसी बीच 21 मई 1991 को तमिलनाडु के श्रीपेरंबदूर में चुनाव प्रचार के दौरान एक आत्मघाती हमले में राजीव गांधी की हत्या कर दी गई। बाद की जाँच में इस हत्या का संबंध लिट्टे (एल टी टी ई) से जोड़ा गया। उनकी हत्या ने पूरे देश को झकझोर दिया और भारतीय राजनीति में एक बड़ा खालीपन पैदा किया। राजीव गांधी का दौर इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि इस समय कांग्रेस के सामने शाहबानो, राम जन्मभूमि और बोफोर्स जैसे मुद्दे आए, जबकि श्रीलंका में आई पी के एफ की भूमिका ने विदेश नीति और सुरक्षा से जुड़े सवालों को भी राजनीति से जोड़ दिया। 1989 के बाद बदलते राजनीतिक समीकरण और 1991 में राजीव गांधी की हत्या ने कांग्रेस प्रणाली के आगे के रूपांतरण की जमीन तैयार की।

1989 के बाद गठबंधन राजनीति : 1989 का लोकसभा चुनाव भारतीय राजनीति में एक महत्वपूर्ण मोड़ लेकर आया। इस चुनाव में कांग्रेस सबसे बड़ी पार्टी तो बनी, लेकिन उसे पहले जैसी स्पष्ट बहुमत की स्थिति नहीं मिली। इससे कांग्रेस के लंबे समय से चले आ रहे राजनीतिक प्रभुत्व को बड़ा झटका लगा। जनता के बीच भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, महँगाई और सरकार की कार्यशैली को लेकर असंतोष बढ़ रहा था। बोफोर्स विवाद ने भी कांग्रेस की छवि को नुकसान पहुँचाया।

चुनाव के बाद जनता दल के नेता विश्वनाथ प्रताप सिंह, जिन्हें आम तौर पर वी.पी. सिंह कहा जाता है, के नेतृत्व में सरकार बनी। इस सरकार को भारतीय जनता पार्टी और वाम दलों सहित अलग–अलग राजनीतिक शक्तियों का बाहर से समर्थन मिला। वी.पी. सिंह सरकार ने भ्रष्टाचार के खिलाफ कार्रवाई और सामाजिक न्याय को प्रमुख मुद्दा बनाया। इसी दौरान मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करने का निर्णय लिया गया, जिसके बाद देश की राजनीति में पिछड़े वर्गों की भागीदारी और आरक्षण को लेकर व्यापक बहस शुरू हुई। इस घटना ने भारतीय राजनीति के सामाजिक आधार को भी काफी हद तक बदल दिया।

वी.पी. सिंह की सरकार ज्यादा समय तक नहीं चल सकी। भाजपा के साथ उसके संबंधों में तनाव बढ़ा और अंततः सरकार गिर गई। इसके बाद चंद्रशेखर के नेतृत्व में एक छोटी सरकार बनी, जिसे कांग्रेस का समर्थन मिला, लेकिन वह भी लंबे समय तक टिक नहीं सकी। 1991 के चुनाव के बाद कांग्रेस ने पी. वी. नरसिंह राव के नेतृत्व में सरकार बनाई। हालांकि कांग्रेस सरकार में थी, लेकिन उसके पास पूर्ण बहुमत नहीं था और उसे अन्य दलों के सहयोग की आवश्यकता पड़ी। इसी दौर में गठबंधन और अल्पमत सरकारों की राजनीति धीरे–धीरे भारतीय राजनीति का सामान्य हिस्सा बनने लगी। 1996 के चुनाव के बाद किसी एक दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला। पहले अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में सरकार बनी, जो बहुत कम समय में गिर गई। इसके बाद संयुक्त मोर्चा सरकारों का गठन हुआ और एच. डी. देवगौड़ा तथा बाद में आई. के. गुजराल प्रधानमंत्री बने। इन सरकारों ने दिखाया कि राष्ट्रीय स्तर पर कई दल मिलकर भी केंद्र में सरकार चला सकते हैं, लेकिन आपसी मतभेद और समर्थन की राजनीति के कारण स्थिरता बनाए रखना बड़ी चुनौती थी।

1989 के बाद गठबंधन राजनीति के विस्तार के साथ भारतीय जनता पार्टी का राष्ट्रीय स्तर पर प्रभाव तेजी से बढ़ा। राम जन्मभूमि आंदोलन और हिंदुत्व से जुड़े मुद्दों ने भाजपा को देश के कई हिस्सों में राजनीतिक आधार बनाने में मदद की। 1989 में लोकसभा में सीमित संख्या से शुरुआत करने वाली भाजपा 1990 के दशक में लगातार मजबूत होती गई और धीरे–धीरे कांग्रेस की प्रमुख राष्ट्रीय प्रतिद्वंद्वी बन गई। 1998 में भाजपा के नेतृत्व में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (एनडीए) की सरकार बनी और 1999 में भी गठबंधन को सफलता मिली। इस दौर ने यह स्पष्ट कर दिया कि भारतीय राजनीति अब केवल कांग्रेस के इर्द–गिर्द नहीं घूम रही थी। क्षेत्रीय दलों, भाजपा और अन्य राजनीतिक शक्तियों की भूमिका बढ़ चुकी थी। गठबंधन सरकारों ने राज्यों और क्षेत्रीय दलों को राष्ट्रीय निर्णयों में अधिक महत्व दिया। इस प्रकार 1989 के बाद का समय कांग्रेस के प्रभुत्व में गिरावट, गठबंधन राजनीति के विस्तार और भाजपा के राष्ट्रीय स्तर पर उभार का महत्वपूर्ण दौर बना, जिसने आगे चलकर भारतीय राजनीति के स्वरूप को पूरी तरह बदलने में बड़ी भूमिका निभाई।

मंडल, भाजपा और सामाजिक राजनीति : 1990 के दशक की शुरुआत में भारतीय राजनीति में सामाजिक न्याय का मुद्दा बहुत तेजी से महत्वपूर्ण बना। प्रधानमंत्री वी.पी. सिंह की सरकार ने 1990 में मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करने की घोषणा की। मंडल आयोग की स्थापना 1979 में बी. पी. मंडल की अध्यक्षता में हुई थी और इसका मुख्य उद्देश्य सामाजिक तथा शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों की स्थिति का अध्ययन करना था। आयोग ने अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) के लिए सरकारी नौकरियों में 27 प्रतिशत आरक्षण की सिफारिश की थी। इसे लागू करने की घोषणा के बाद देश के कई हिस्सों में इसके समर्थन और विरोध में आंदोलन हुए। खासकर युवाओं के एक वर्ग ने इसका विरोध किया, जबकि पिछड़े वर्गों के बीच इसे सामाजिक और राजनीतिक भागीदारी बढ़ाने के अवसर के रूप में देखा गया। मंडल की राजनीति ने भारतीय राजनीति के पुराने समीकरणों को काफी हद तक बदल दिया। इसके बाद चुनावों में जाति, सामाजिक प्रतिनिधित्व और पिछड़े वर्गों की राजनीतिक भागीदारी पहले से अधिक महत्वपूर्ण मुद्दे बन गए। कई राज्यों में पिछड़े वर्गों से आने वाले नेताओं और दलों का प्रभाव बढ़ा और राजनीति में सामाजिक आधार का विस्तार हुआ।

इसी समय भारतीय जनता पार्टी का विस्तार भी तेजी से हुआ। 1980 में भाजपा के गठन के बाद पार्टी ने धीरे–धीरे अपना संगठन मजबूत किया और 1980 तथा 1990 के दशक में कई राज्यों में अपना आधार बनाया। राम जन्मभूमि आंदोलन ने भाजपा को राष्ट्रीय राजनीति में एक बड़ा मुद्दा दिया। 6 दिसंबर 1992 को अयोध्या में बाबरी मस्जिद का विध्वंस हुआ, जिसके बाद देश के कई हिस्सों में साम्प्रदायिक तनाव और राजनीतिक विवाद बढ़ गया। इस घटना ने भारतीय राजनीति को लंबे समय तक प्रभावित किया। भाजपा के समर्थन में वृद्धि और राम मंदिर के मुद्दे ने राष्ट्रीय राजनीति में उसकी स्थिति मजबूत करने में भूमिका निभाई। दूसरी ओर मंडल की राजनीति ने पिछड़े वर्गों के राजनीतिक संगठन को मजबूत किया। इस तरह 1990 के दशक में भारतीय राजनीति में एक तरफ सामाजिक न्याय और आरक्षण की राजनीति मजबूत हुई, तो दूसरी तरफ धार्मिक पहचान और राम जन्मभूमि जैसे मुद्दों का प्रभाव भी बढ़ा। इन दोनों धाराओं ने मिलकर राजनीतिक दलों की रणनीति, चुनावी मुद्दों और मतदाताओं के सामाजिक समीकरणों में महत्वपूर्ण बदलाव किया।

इसी दौर में बहुजन समाज पार्टी (बीएसपी) ने दलित राजनीति को एक मजबूत राजनीतिक मंच देने का काम किया। कांशीराम के नेतृत्व में का गठन 1984 में हुआ और बाद में मायावती के नेतृत्व में पार्टी ने उत्तर प्रदेश की राजनीति में महत्वपूर्ण स्थान बनाया। पार्टी ने दलितों, पिछड़े वर्गों और अन्य वंचित समूहों के राजनीतिक प्रतिनिधित्व को प्रमुख मुद्दा बनाया। इससे उन सामाजिक वर्गों को राजनीति में अपनी अलग पहचान और नेतृत्व विकसित करने का अवसर मिला, जो लंबे समय तक मुख्यधारा की राजनीति में अपेक्षाकृत कमजोर रहे थे। मंडल आयोग, भाजपा का विस्तार, राम जन्मभूमि आंदोलन और ठैच की बढ़ती ताकत ने 1990 के दशक की भारतीय राजनीति को नई दिशा दी। अब चुनाव केवल विकास या राष्ट्रीय नेतृत्व के आधार पर नहीं लड़े जा रहे थे, बल्कि जाति, सामाजिक पहचान, धार्मिक मुद्दे और प्रतिनिधित्व भी चुनावी राजनीति के महत्वपूर्ण आधार बन गए थे। इस परिवर्तन ने कांग्रेस के पुराने सामाजिक गठजोड़ को और कमजोर किया तथा बहुदलीय और सामाजिक आधार पर बंटी हुई राजनीति को मजबूत किया। इस

प्रकार मंडल और उसके बाद की सामाजिक राजनीति भारतीय लोकतंत्र में नए समूहों की राजनीतिक भागीदारी बढ़ाने वाली महत्वपूर्ण प्रक्रिया साबित हुई।

1991 के बाद आर्थिक उदारीकरण : 1991 के बाद भारतीय अर्थव्यवस्था में एक बड़ा बदलाव आया। उस समय देश गंभीर आर्थिक संकट से गुजर रहा था और विदेशी मुद्रा भंडार की स्थिति भी कमजोर हो गई थी। इसी परिस्थिति में पी. वी. नरसिम्हा राव के नेतृत्व में नई सरकार बनी और डॉ. मनमोहन सिंह को वित्त मंत्री बनाया गया। सरकार ने अर्थव्यवस्था को सुधारने के लिए कई महत्वपूर्ण कदम उठाए। पहले उद्योग शुरू करने या उसका विस्तार करने के लिए सरकार से कई तरह की अनुमति लेनी पड़ती थी। इस व्यवस्था को आम तौर पर लाइसेंस व्यवस्था कहा जाता था। 1991 की नई आर्थिक नीति में इस व्यवस्था को काफी हद तक सरल किया गया और अनेक उद्योगों को सरकारी नियंत्रण से बाहर किया गया। इसका उद्देश्य निजी क्षेत्र को अधिक स्वतंत्रता देना और अर्थव्यवस्था में प्रतिस्पर्धा बढ़ाना था। सरकार ने यह भी महसूस किया कि केवल सरकारी क्षेत्र के सहारे आर्थिक विकास की गति को तेज करना मुश्किल है। इसलिए निजी कंपनियों और उद्यमियों के लिए काम करने का वातावरण आसान बनाने पर जोर दिया गया। इन बदलावों ने भारतीय अर्थव्यवस्था को पुराने नियंत्रित ढाँचे से निकालकर एक अधिक खुली और प्रतिस्पर्धी व्यवस्था की ओर बढ़ाया।

उदारीकरण के साथ विदेशी निवेश को भी भारत में आने का अवसर मिला। सरकार ने कई क्षेत्रों में विदेशी कंपनियों के लिए नियमों को आसान किया, जिससे भारत में पूंजी और नई तकनीक आने की संभावना बढ़ी। निजी क्षेत्र को बैंकिंग, दूरसंचार, उद्योग, सेवा और अन्य क्षेत्रों में विस्तार करने के लिए अधिक अवसर मिले। इसका असर धीरे–धीरे रोजगार और व्यापार के नए क्षेत्रों पर भी दिखाई देने लगा। पहले जहाँ सरकारी संस्थानों की भूमिका अधिक थी, वहीं अब निजी कंपनियों की संख्या और उनका प्रभाव बढ़ने लगा। उदारीकरण के समर्थकों का मानना था कि इससे उत्पादन, प्रतिस्पर्धा और निवेश बढ़ेगा तथा भारतीय कंपनियों को अंतरराष्ट्रीय बाजार में आगे बढ़ने का अवसर मिलेगा। दूसरी ओर कुछ लोगों ने यह चिंता भी जताई कि आर्थिक सुधारों का लाभ समाज के सभी वर्गों तक समान रूप से नहीं पहुँच सकता और छोटे उद्योगों तथा कमजोर वर्गों पर इसका दबाव पड़ सकता है। इसलिए 1991 के बाद आर्थिक बदलाव केवल आर्थिक नीति का विषय नहीं रहा, बल्कि रोजगार, असमानता और सामाजिक विकास से जुड़ा राजनीतिक मुद्दा भी बन गया।

1991 के बाद सबसे महत्वपूर्ण बदलावों में से एक आईटी और सेवा क्षेत्र का तेजी से विकास था। कंप्यूटर, सॉफ्टवेयर, दूरसंचार और सूचना तकनीक से जुड़े कामों ने भारत की अर्थव्यवस्था को नई दिशा दी। बेंगलुरु, हैदराबाद, पुणे, चेन्नई और नोएडा जैसे शहरों में आईटी तथा सेवा क्षेत्र से जुड़े रोजगार और व्यवसाय तेजी से बढ़े। भारतीय युवाओं के लिए निजी क्षेत्र में नए अवसर पैदा हुए और देश की वैश्विक पहचान भी मजबूत हुई। आर्थिक उदारीकरण ने धीरे–धीरे मध्यम वर्ग के जीवन, उपभोग की आदतों और रोजगार के तरीकों को भी प्रभावित किया। भारतीय कंपनियों का विदेशी बाजार से संपर्क बढ़ा और वैश्वीकरण की प्रक्रिया तेज हुई। हालांकि इसके लाभ सभी क्षेत्रों और वर्गों में समान रूप से नहीं पहुँचे, फिर भी 1991 के आर्थिक सुधारों ने भारत की राजनीति और अर्थव्यवस्था दोनों को प्रभावित किया। कांग्रेस सरकार द्वारा शुरू किए गए इन सुधारों ने आगे की सरकारों के लिए भी आर्थिक नीति की एक नई दिशा तय की और भारतीय राजनीति में विकास, निजीकरण, रोजगार तथा वैश्विक अर्थव्यवस्था जैसे मुद्दों को अधिक महत्व दिलाया।

2014 में भाजपा का बहुमत : 2014 का लोकसभा चुनाव भारतीय राजनीति के लिए एक बहुत महत्वपूर्ण मोड़ माना जाता है। इस चुनाव से पहले लगभग तीन दशकों तक किसी एक दल को लोकसभा में अपने दम पर स्पष्ट बहुमत नहीं मिला था। 2004 और 2009 में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यू पी ए) के नेतृत्व में कांग्रेस की सरकार बनी थी, लेकिन 2014 तक आते–आते कांग्रेस के प्रति जनता में असंतोष बढ़ने लगा था। महँगाई, भ्रष्टाचार के आरोप, बेरोजगारी और सरकार की निर्णय लेने की क्षमता को लेकर सवाल उठ रहे थे। दूसरी ओर भारतीय जनता पार्टी ने नरेंद्र मोदी को प्रधानमंत्री पद का प्रमुख चेहरा बनाकर चुनाव लड़ा। भाजपा ने विकास, मजबूत नेतृत्व, रोजगार, सुशासन और बदलाव जैसे मुद्दों को प्रमुखता दी। 2014 के लोकसभा चुनाव में भाजपा ने 282 सीटें जीतकर अपने दम पर स्पष्ट बहुमत हासिल किया। यह उपलब्धि इसलिए भी महत्वपूर्ण थी क्योंकि 1984 के बाद पहली बार किसी गैर–कांग्रेसी दल को अकेले लोकसभा में बहुमत मिला था। चुनाव परिणाम ने यह संकेत दिया कि भारतीय मतदाताओं की राजनीतिक पसंद में बड़ा बदलाव आ चुका है और राष्ट्रीय स्तर पर कांग्रेस के सामने भाजपा एक मजबूत विकल्प के रूप में स्थापित हो गई है।

भाजपा की इस सफलता के बाद नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में केंद्र में सरकार बनी। हालांकि भाजपा को अपने दम पर बहुमत प्राप्त था, फिर भी राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (एनडीए) के सहयोगी दल सरकार के साथ जुड़े रहे। 2014 में भाजपा की जीत केवल सीटों की संख्या तक सीमित नहीं थी, बल्कि इसने राष्ट्रीय राजनीति के नेतृत्व और राजनीतिक बहस की दिशा को भी बदल दिया। लंबे समय तक कांग्रेस भारतीय राजनीति की मुख्य धुरी रही थी और बाद के वर्षों में गठबंधन सरकारों के कारण क्षेत्रीय दलों का प्रभाव काफी बढ़ गया था। 2014 के परिणाम ने इस स्थिति में एक नया बदलाव किया। भाजपा ने राष्ट्रीय स्तर पर अपना संगठन और चुनावी आधार मजबूत किया तथा कई राज्यों में भी अपने प्रभाव का विस्तार किया। नरेंद्र मोदी की व्यक्तिगत लोकप्रियता, मजबूत नेतृत्व की छवि और विकास का संदेश चुनाव अभियान का महत्वपूर्ण हिस्सा बने। सोशल मीडिया, बड़े स्तर का प्रचार और कार्यकर्ताओं की सक्रियता ने भी चुनावी अभियान को नया रूप दिया। इस तरह 2014 का चुनाव भारतीय चुनावी राजनीति में नेतृत्व, प्रचार और मतदाताओं से सीधे जुड़ने के बदलते तरीकों का भी उदाहरण बना।

2014 के बाद भारतीय राजनीति में भाजपा का राष्ट्रीय प्रभाव और मजबूत हुआ। कांग्रेस की सीटों में भारी कमी आई और वह लोकसभा में मुख्य विपक्षी भूमिका निभाने की स्थिति में भी कमजोर रही। इसके विपरीत भाजपा ने केंद्र में स्पष्ट बहुमत के साथ सरकार बनाकर यह दिखाया कि गठबंधन के दौर के बाद भी कोई एक राष्ट्रीय दल अपने दम पर

बहुमत प्राप्त कर सकता है। हालांकि एनडीए के सहयोगी दलों की राजनीतिक भूमिका बनी रही और केंद्र की राजनीति में क्षेत्रीय दल पूरी तरह समाप्त नहीं हुए, फिर भी राष्ट्रीय स्तर पर भाजपा की स्थिति पहले की तुलना में काफी मजबूत हो गई। इस परिवर्तन को कांग्रेस प्रणाली के लंबे पतन और भारतीय राजनीति में नए राजनीतिक प्रभुत्व के उभरने की प्रक्रिया के संदर्भ में समझा जा सकता है। 1967 से शुरू हुई कांग्रेस के प्रभुत्व में गिरावट, 1977 में पहली गैर–कांग्रेसी सरकार, 1989 के बाद गठबंधन राजनीति, क्षेत्रीय दलों का विस्तार और अंततः 2014 में भाजपा को स्पष्ट बहुमतकृइन सभी घटनाओं ने मिलकर भारतीय राजनीति के स्वरूप को बदला। इसलिए 2014 का चुनाव इस अध्ययन की समय–सीमा में एक महत्वपूर्ण पड़ाव है, जहाँ बहुदलीय प्रतिस्पर्धा के बीच भाजपा एक प्रमुख राष्ट्रीय राजनीतिक शक्ति के रूप में उभरकर सामने आई।

निष्कर्ष : 1967 से 2014 तक भारतीय राजनीति में लगातार बड़े बदलाव देखने को मिले। आजादी के बाद लंबे समय तक कांग्रेस देश की राजनीति की सबसे मजबूत पार्टी रही और केंद्र के साथ–साथ अधिकांश राज्यों में भी उसका प्रभाव बना रहा। इसी स्थिति को कांग्रेस प्रणाली के रूप में समझा जाता है। लेकिन 1967 के चुनाव के बाद कांग्रेस के प्रभुत्व को पहली बड़ी चुनौती मिली। 1969 में कांग्रेस के विभाजन, 1975 के आपातकाल और 1977 में जनता पार्टी की सरकार बनने से यह बदलाव और साफ दिखाई देने लगा। 1977 में पहली बार केंद्र में गैर–कांग्रेसी सरकार बनने से यह साबित हुआ कि सत्ता का विकल्प मौजूद है और मतदाता किसी भी दल को सत्ता से बाहर कर सकता है। इसके बाद कांग्रेस की स्थिति धीरे–धीरे कमजोर होती गई और भारतीय राजनीति में नए दलों तथा नए नेताओं के लिए जगह बनती गई।

1980 और 1990 के दशक में यह बदलाव और तेज हुआ। क्षेत्रीय दलों ने राज्यों में अपनी मजबूत पहचान बनाई और राष्ट्रीय राजनीति में भी उनका महत्व बढ़ा। 1989 के बाद गठबंधन सरकारों का दौर शुरू हुआ, जिसमें किसी एक दल के लिए अकेले सरकार चलाना आसान नहीं था। इसी समय मंडल आयोग की सिफारिशों और ओबीसी आरक्षण ने सामाजिक न्याय और राजनीतिक प्रतिनिधित्व के सवाल को प्रमुख बनाया। दलित राजनीति के विस्तार के साथ बीएसपी जैसे दल मजबूत हुए। दूसरी ओर भाजपा ने भी धीरे–धीरे अपना राष्ट्रीय आधार बढ़ाया और 1990 के दशक में कांग्रेस की प्रमुख राजनीतिक प्रतिद्वंद्वी बन गई। 1991 के आर्थिक सुधारों ने भी भारतीय समाज और राजनीति को प्रभावित किया। निजी क्षेत्र, विदेशी निवेश, आईटी और सेवा क्षेत्र के विस्तार के साथ विकास और आर्थिक बदलाव चुनावी राजनीति के महत्वपूर्ण मुद्दे बने। इस पूरे दौर में भारतीय राजनीति केवल एक पार्टी के इर्द–गिर्द नहीं रही, बल्कि अलग–अलग सामाजिक, क्षेत्रीय और राजनीतिक समूहों की भागीदारी बढ़ती गई।

2014 का लोकसभा चुनाव इस लंबे राजनीतिक बदलाव का एक महत्वपूर्ण पड़ाव साबित हुआ। भारतीय जनता पार्टी ने नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में अपने दम पर स्पष्ट बहुमत हासिल किया और केंद्र में सरकार बनाई। यह स्थिति इसलिए महत्वपूर्ण थी क्योंकि लंबे समय के बाद किसी एक दल को स्पष्ट बहुमत मिला और गठबंधन राजनीति के बीच भाजपा राष्ट्रीय स्तर पर एक मजबूत राजनीतिक शक्ति के रूप में सामने आई। हालांकि क्षेत्रीय दलों और गठबंधन सहयोगियों का महत्व पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ, लेकिन राष्ट्रीय राजनीति में भाजपा का प्रभाव काफी मजबूत हुआ। इस प्रकार 1967 से 2014 तक का सफर कांग्रेस के एक–दलीय प्रभुत्व से शुरू होकर बहुदलीय प्रतिस्पर्धा, क्षेत्रीय दलों के विस्तार, गठबंधन सरकारों, सामाजिक न्याय की राजनीति और अंततः भाजपा के नए राष्ट्रीय प्रभुत्व तक पहुँचता है। इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय लोकतंत्र समय के साथ लगातार बदलता रहा है और जनता की राजनीतिक पसंद, सामाजिक बदलाव तथा क्षेत्रीय आकांक्षाओं ने इस परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

संदर्भ सूची :

1. ब्रास, पॉल आर. स्वतंत्रता के बाद भारत की राजनीति। कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1994।
2. चंद्र, बिपिन, आदि। स्वतंत्रता के बाद भारत। पेंगुइन बुक्स, 2008।
3. गुहा, रामचंद्र। गांधी के बाद भारत : विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र का इतिहास। हार्पर कॉलिन्स पब्लिशर्स, 2007।
4. कोहली, अतुल। लोकतंत्र और असंतोष : भारत की शासन–व्यवस्था का बढ़ता संकट। कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1990।
5. कोठारी, रजनी। भारत में राजनीति। ओरिएंट लॉन्गमैन, 1970।
6. फ्रैंकेल, फ्रांसिन आर. भारत की राजनीतिक अर्थव्यवस्था, 1947 –2004 : क्रमिक क्रांति। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2005।
7. हसन, ज़ोया। भारत में राजनीति और राज्य। सेज पब्लिकेशन्स, 2000।
8. जाफरलो, क्रिस्टोफ। भारत की मौन क्रांति : उत्तर भारत में निम्न जातियों का उदय। कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस, 2003।
9. मैनर, जेम्स। नेहरू से नब्बे के दशक तक : भारत की बदलती राजनीतिक अर्थव्यवस्था। क्रूम हेल्म, 1984।
10. रूडोल्फ, लॉयड आई., और सुज़ैन होबर रूडोल्फ। लक्ष्मी की खोज में : भारतीय राज्य की राजनीतिक अर्थव्यवस्था। यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, 1987।
11. वनाइक, अचिन। भारतीय सांप्रदायिकता का उग्र रूप : धर्म, आधुनिकता और धर्मनिरपेक्षता। वर्सो, 1997।
12. सरकार, सुमित। आधुनिक भारत, 1885 –1947। मैकमिलन इंडिया, 1983।
13. यादव, योगेंद्र। "भारतीय राजनीति में पुनर्संरचना – राज्य विधानसभा चुनाव, 1989 –95।" इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, खंड 34, अंक 23, 1999, पृ. 1536ः –1545।
14. भारत निर्वाचन आयोग। लोकसभा के आम चुनावों की सांख्यिकीय रिपोर्टें। भारत निर्वाचन आयोग, विभिन्न वर्ष।
15. भारत सरकार। आर्थिक सर्वेक्षण। वित्त मंत्रालय, विभिन्न वर्ष।

•